भारतीय समकालीन चित्रकला में प्रयोगवादी अवधारणाएं

मंजू यादव
शोध छात्रा
दृश्य कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सारांश

कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में 'प्रयोग' आज से नहीं, वरन् सदियों से निरन्तर रूप में होते चले आ रहे हैं। किन्तु यह 'प्रयोग' हमें तब दृष्टिगत होता है, जब वह उस विधा या कला में हावी हो जाता है। यदि हम कला के सन्दर्भ में बात करें तो, इस क्षेत्र में हो रहें 'प्रयोगों की अवधारणाओं' के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि कलाकार जब संसार के हर तरह के दुःख, बाधाओं, घटनाओं एवं भौतिकता से मुक्त होकर एक विशेष अवस्था में पहुँचता है, जहाँ से वह सृजन (कलाकृति का निर्माण) करना प्रारम्भ करता है, तो यह सृजन ही अपने आप में एक प्रयोग होता है। यह संसार में की जा रही एक–दूसरे से भिन्न प्रकार की क्रिया है, जो सृजन के प्रयोग के स्तर को दिशा देगी।

हालांकि चित्रकला सृजन में 'प्रयोग' करने की यह परम्परा आदिकाल से चलती आ रही है। जब प्रागैतिहासिक मानव के पास अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये शब्द नही थे, तब उन्होंने चित्रों का सहारा लिया। साथ ही अपने जीवन निर्वाह के लिये कल्पना से आवश्यक हथियारों को बनाया और उसमें निरन्तर प्रयोग करते हुए नित नये–नये अविष्कार करता गया जोकि आज तक अनवरत् रूप में चल रहा है। इसी प्रकार आदि मानव द्वारा बनाये गये चित्रों से ही प्रेरित होकर कलाकार समय, काल एवं परिस्थितियों के अनुकूल उसमें प्रयोग करता गया और इसका परिणाम यह हुआ कि आज हमारे सामने जो कला आधुनिक कला के नाम से प्रचलित है, वह कहीं ना कहीं प्रागैतिहासिक कालीन कला का ही परिष्कृत रूप है।

मुख्य शब्द – भारतीय समकालीन कला,, प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ, अवधारणाएं, प्रयोगधर्मिता।

शोध पत्र

कला के क्षेत्र में आज कई प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं, जिन्हे हम अनेक नामों से जानते हैं। यह प्रयोग हमारे परम्परागत अभ्यास एवं विधियों से पूर्णतया भिन्न है, जिसके कारण इसे कुछेक शब्दों में बाँधना कठिन है। कला में कलाकारों द्वारा 'प्रयोग' करने की प्रवृत्ति कलाकारों की सहज क्रियाओं में से एक है। जिस प्रकार अंगों का संचालन, किसी वस्तु अथवा सामग्री का प्रयोग, किसी कार्य को करने की विधि आदि में हमें जिन प्रक्रियाओं से होकर गुजरना होता है, वे सब प्रयोगाश्रित होती हैं। चूंकि मानव एक सामाजिक प्राणि है, जिसके कारण मानव की ये स्वभाविक प्रवृत्ति रही है कि, वह प्रकृति के रहस्यों को ढूढते हुए, उनको सुलझाते हुए, निरन्तर प्रकृति से सीखते हुए एवं उससे प्रेरणा पाकर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है,। मानव द्वारा किये गये ये प्रयत्न ही 'प्रयोग' बन जाते हैं। यह नयापन ही प्रयोगकर्त्ता की आनन्दानुभूति का कारण बनता है। इस प्रकार प्रयोगधर्मिता मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में सक्रिय रूप में दिखायी देने लगती है।

समकालीन कला में 'प्रयोग' की अवधारणा' मानव जाति के विकास के समानान्तर चली आ रही है, लेकिन इसे गति मिली है, 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में। वैज्ञानिक अविष्कारों और मशीनी उद्योगों के आविर्भाव से समाज की संरचना में परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि इससे कला भी बहुआयामी होती चली गयी और कला में प्रयोग करने की प्रवृत्ति के नये–नये आयाम स्थापित होते चले गये। विश्व कला के महत्वपूर्ण केन्द्रों 'अमेरिका से लेकर यूरोप' तक में और साथ ही विकासशील देशों से लेकर विकसित देशों में 'प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ' अपने चरम पर पहुँच गयीं। पाश्चात्य देशों से आये आधुनिक कला आन्दोलनों में 'प्रयोग' करने की प्रवृत्ति ने न सिर्फ कला के बाहरी स्वरूप को प्रभावित किया, बल्कि उसने कला के आन्तरिक पक्ष भाव और संवेदनाओं को भी पूरी तरह प्रभावित किया। यदि हम आधुनिक कला के मुख्य कलाकारों पिकासो, ब्राक, वॉन गॉग, हेनरी मूर, मुंच, बर्गसा आदि की कलाकृतियों पर दृष्टिपात करें तो इनकी कलाकृतियाँ आधुनिक कला या समकालीन कला में परिवर्तित हो रही गति का एहसास कराती हैं।

जब हम समकालीन चित्रकला की बात करते हैं तो सर्वप्रथम हमारे जेहन में आता है इसके द्वारा (समकालीन कला) चित्रकारों को प्रदान की गयी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। चाहे वह स्वतंत्रता विचारों की हो, विषय–वस्तु की हो, माध्यम की हो, शैली की हो या तकनीक की। यह स्वतंत्रता ही प्रयोग करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा

देती है। यदि समकालीन कला में कलाकारों द्वारा प्रयोग की गयी सामग्री एवं तकनीक की बात की जाये तो माध्यमों की विविधता और कलाकृति का स्थायित्व दोनों ही महत्वपूर्ण हो जाता है। इसमें वैज्ञानिक क्रान्ति ने भी कलाकारों का खूब साथ दिया। जिससे उनका काम काफी हद तक आसान हो गया। विज्ञान ने कलाकारों को ऐसे उत्पाद दिये जिससे कलाकृतियों और उनमें प्रयुक्त रंगों को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखना अब मुमकिन हो गया। इसके साथ ही साथ कलाकारों के पास बहुत सारे विकल्प मौजूद होने लगे, जिसके फलस्वरूप कला में प्रयोग करने की प्रवृत्ति के प्रचलन को बढ़ावा मिला। अब चित्र के रंगों की चमक बनाये रखने या बढ़ाने के लिये कलाकारों ने कई तरह के प्रयोग किये। टेम्परा माध्यम या जलरंग के गुण से अलग तैल माध्यम की चमक ने कलाकारों को आकर्षित किया और धीरे–धीरे समय के साथ यह कलाकार का प्रिय माध्यम भी बन गया और जब कलाकार का माध्यम बदला तो इससे उनके प्रयोग करने की शैली में परिवर्तन के साथ वार्निर्शिंग तथा ग्लेजिंग का प्रचलन हुआ।

कलागत परिवर्तनों एवं वैज्ञानिकता ने कला की दशा एवं दिशा दोनो को प्रभावित किया। 'प्रभाववाद' आधुनिक कला का एक ऐसा क्रान्तिकारी आन्दोलन रहा, जहाँ से कला में 'प्रयोग' करने की प्रवृत्ति का जन्म हुआ। जो कलाकारों को खुले आसमान के नीचे बैठकर 'सूर्य के प्रकाश' पर ध्यान देने के सिद्धान्त को प्रेषित किया। इस आन्दोलन से एक कदम आगे 'नेत्रीय कला' (ऑप ऑर्ट) भी कलाकारों की उच्च प्रयोगधर्मिता का ही उदाहरण है। जिसमें भविष्यवादी कलाकारों के सिद्धान्तों (कलाकृति में गति प्रदर्शित करना) से आगे बढ़कर रंगों को इस प्रकार मिश्रित कर के विषय–वस्तु को प्रस्तुत किया जिससे दृष्टि को भ्रमित किया जा सके। समकालीन कला में कलाकारों द्वारा किये जा रहे स्वतंत्र प्रयोगों को कला समीक्षकों एवं दर्शको द्वारा काफी प्रोत्साहित किया जा रहा है। साथ ही साथ मूर्ति, चित्र, ग्राफिक, मोन्टाज, कोलाज आदि में भी इसका समन्वित रूप में प्रयोग होने लगा है। चूंकि कला में 'विशेष प्रयोगों' का प्रचलन आधुनिक कला के साथ ही हुआ। जिसमें कलाकार काफी आगे बढ़ गया। वह संश्लेषणात्मक घनवादी प्रवृत्तियों से भी नही संतुष्ट हुआ। उसने बहुत आगे बढ़कर मानव शरीर को ही तूलिका बना डाला। जिसमें उसने महिलाओं के शरीर पर रंग छिड़कर भूमि पर बिछे कागज के रोल पर उन्हें लुढ़काकर या हाथ–पैर फैलाये हुए उनके शरीर को क्रेन से उठाकर धीरे से कागज पर रखकर या कुछ निश्चित उँचाई से गिराकर रंगे हुए शरीर की छाप कागज पर लेने की तकनीक का प्रयोग किया, जो 'लिविंग ब्रश' के नाम से प्रसिद्ध हुई। लेकिन यह तकनीकी भी समय की गति के साथ बदल गयी। वर्तमान कला क्षेत्र में 'कम्प्यूटर कला' नवीन कला के रूप में प्रचलित हो रही है। इसने प्रयोगवादी कलाकारों को एक नयी सम्भावना दिखायी। कलाकारों ने भी उस विधा का प्रभावी उपयोग करना आरम्भ कर दिया है। समकालीन कला में हो रहे प्रयोगों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि आज का कलाकार पुराने में से कुछ नया निकालने के लिये ललायित है। जिसके लिये वह अपने प्रत्येक कृति में कुछ ना कुछ नया (अलग) प्रयोग कर रहा है। आज कलाकार समय के गति के अनुसार अपनी कला आकृतियों, रंगों तथा धरातलों में भी इच्छानुसार परिवर्तन कर रहे हैं। आज उसके लिये कलाकृतियों में विकृति उत्पन्न करना मात्र अंगुलियों का खेल रह गया है।

भारतीय समकालीन कला में 20वीं शताब्दी कलागत रूप में बहुत महत्वपूर्ण रही। इस समय यहाँ कला, साहित्य, धर्म, दर्शन, राजनीति, विज्ञान आदि में भी बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग हुए। विज्ञान एवं मशीनीकरण ने कला जगत की विषय–वस्तु को बहुत प्रभावित किया। समसामयिक चित्रकला के तत्कालीन परिवेश में प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ चित्रकारों पर काफी हावी है, जो उनके कलाकृतियों में स्पष्ट नजर आती हैं। समकालीन कला में तेजी से बदलते सृजन के द्वंद, व्यक्तिगत इच्छा, रूचि, एक–दूसरे से अलग हटकर अभिव्यक्ति करने की विशेषता तथा कला भाषा की मौलिकता ने कलाकार को यथार्थ के विपरीत अमूर्त चित्र रचना करने के लिये प्रेरित किया। तत्कालीन आधुनिक चित्रकला ने चित्रकारों को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है तो यह भी सत्य है कि प्रत्येक चित्रकार एक ही तरह के विचारों पर आधरित चित्र नही बना सकता और यहीं से चित्रकला में प्रयोगवाद आरम्भ हो गया। जिसके फलस्वरूप समकालीन कला में चित्र रचना की दो राहें दिखायी देने लगीं। एक राह जो आकृति मूलक चित्र रचना की ओर चली तो दूसरी राह अमूर्त कला की ओर चली। आकृतिमूलक में चित्रकारों ने यथार्थ जगत में होने वाली घटनाओं का यथार्थ (हूबहू) चित्रण करने के लिये आकृति मूलक चित्र बनाये। जिसमें लोक कला, दृश्य चित्रण, फोटोग्राफी, वस्तु चित्रण को सृजन का आधार बनाकर हूबहू चित्रण किया गया। इन आकृतिमूलक चित्रकारों में एन॰ एस॰ बेन्द्रे, ए॰ रामचन्द्रन, भूपेन खक्कर, बी॰ सी॰ सान्याल, पारितोष सेन, जगदीश डे आदि चित्रकार प्रमुख हैं। ये ऐसे चित्रकार हैं जिनकी कला में हमें उनकी व्यक्तिगत रूचि की झलक के साथ–साथ सामाजिक जीवन की झलकियाँ भी देखने को मिलती हैं। ये कलाकार सदैव ही समाज के प्रति गम्भीर थे तथा समाज के प्रति अपने दायित्वों को गम्भीरता पूर्वक समझते थे, किन्तु ये कलाकार भी समय के साथ–साथ नई शैलियों को अपनाये। एन॰ एस॰ बेन्द्रे ने दृश्यचित्रण, तैल और गोचा शैली को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और साथ ही वर्गाकृतियों, छायावाद और अमूर्त क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग किये। पारितोष सेन आधुनिक भारतीय कला के ऐसे कलाकार हैं जिनकी कला में हमें भारत की पारम्परिक विरासत से लेकर आधुनिकता के तत्वों का पूर्ण रूप से समन्वय दिखता है। उनके चित्रों में हमें पारम्परिक भारतीय लोक तत्वों (बंगाल की सशक्त लोक परम्परा, कालीघाट पेंटिग के बोल्ड रंग, उसके लोक मुहावरें), पाश्चात्य कलाकारों वॉन गॉग, पिकासों, डी॰ कूनिंग, जैक्सन पोलाक का भी प्रभाव दिखायी देता है। हालांकि बीच में अमूर्तन के करीब भी जाते दिखते है। इनकी कला में हमें विविधतायें दिखती हैं। अपर्णा कौर भी 21वीं सदी की एक ऐसी चित्रकार हैं जो सामाजिक परिस्थितियों और कुरीतियों को चित्रांकित करने के लिये जानी जाती हैं। इन्होंने अपने चित्रों के विषय–वस्तु में जीवन के छोटे–छोटे पहलुओ को, काल्पनिक कथाओं को और धार्मिकता को मुख्य रूप से जगह दी है। जिसमें इन्होंने अति प्रिय रंगों गॉच, जलरंग, तैलरंग, एक्रेलिक तथा चारकोल आदि माध्यमों द्वारा भावाभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार गोगी सरोज पाल ने भी गॉच, तैलरंग, कढ़ाई इत्यादि माध्यमों का प्रयोग करते हुए महिला को अपने चित्रण का मुख्य विषय बनाया। इन्होंने स्त्री की वास्तविक स्थिति को दर्शाने एवं उसके यथार्थ भावों को दिखाने के लिये प्रयोगात्मक ढंग से कपड़े और रंगों का प्रयोग कैनवस पर किया है।

जबकि इसके विपरीत अमूर्तनवादी चित्रकार रहें, जो परम्परा व धर्म के बन्धन से मुक्त होकर चित्रण में स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने की चाह रखते थे। सन् 1908 में फ्रासिस पिकेबिया ने सर्वप्रथम गैर–आकृतिमूलक तैल चित्र बनाया। सन् 1910 में कांडेन्सकी ने ऐसे प्रथम अमूर्त चित्र की रचना की जो यथार्थ से सम्बन्धित माना जा सकता है और उससे परे भी। अमूर्तनवादी जैक्सन पोलाक्, क्लाइन, मार्क रोथोको जैसे चित्रकारों से प्रभावित होकर अनेक भारतीय चित्रकारों ने भी अमूर्तन की राह पकड़ी। जिनमें मुख्य रूप से गोयतोडें, जे॰ राम पटेल, अम्बादास, कृष्णा रेड्डी आदि रहे हैं। जिन्होंने समकालीन कला में न केवल नये–नये प्रयोग किये, बल्कि अपने चित्रों को विशेष प्रकार से अंकित करके उन्हे सरल एवं व्यवस्थित स्वरूप भी प्रदान किया। रंगों एवं आकारों को चित्राकृति का आधार बनाकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति वस्तु निरपेक्ष चित्रों की रचना द्वारा की। अमूर्तवादी कला में ही एक राह तांत्रिक कलाकारों की रही। जिसमें जी॰ आर॰ संतोष, वीरेन डे, के॰ सी॰ एस॰ पणिक्कर, गणेश पाइन आदि प्रमुख है। आरम्भ में नव तांत्रिक कला के विषय–वस्तु विवाद के विषय भी बने। किन्तु जी आर संतोष ऐसे कलाकार थे जो इन विवादो से दूर तांत्रिक चित्राकृतियाँ बनाते रहें। क्योंकि उन्होंने प्राचीन भारतीय कश्मीरी तंत्र–मंत्र का अध्ययन कर उसको आत्मसात कर लिया था। वह तंत्र के दार्शनिक व वैचारिक सन्दर्भ को यथावत् समझते थे। इस प्रकार आकृति मूलक चित्र में जहाँ यथार्थ दृश्य की छायाकृति या प्रतिबिम्ब मात्र रही है, तो वहीं अमूर्त कला में कलाकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति प्रतीकों, धार्मिक प्रतीकों, अक्षरों, रंग, तंत्र–मंत्र इत्यादि तत्वों से होती रही है।

हालांकि आज कला बाजार कलाकृतियों तथा कलाकारों की गुणवत्ता निर्धारित करने का एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। समकालीन कलाकारों द्वारा की जा रही प्रयोगवादिता में कला बाजार अहम भूमिका निभा रहा है। यह किसी भी चित्राकृति एवं चित्रकार को विश्व स्तर पर पहुँचाने का माध्यम है। यदि आज भारतीय कलाओं या लोक कलाओं को विश्व स्तर पर पहचान मिली है तो उसका श्रेय अमुक कलाकार के साथ–साथ कला बाजार को ही है। हालांकि इसके दोनो पक्ष सकारात्मक एवं नकारात्मक बहुत अहम हो गये हैं। एक ओर तो यह कलाकार को आर्थिक रूप से सम्पन्न बना रहा है, तो दूसरी तरफ इसके कारण कलाकृतियों में विकृतियाँ भी आने लगी हैं। जोकि किसी कलाकृति के सृजन से लेकर, उसके भाव, संवेदना तक में दिखायी देने लगी है। आज का कलाकार बाजार में कलाकृति की बिक्री की झोंक में तत्कालिकता को अपनाने लगा है। साथ ही साथ वह बाजार के मांग के अनुरूप भी अपनी पसंद से समझौता करने लग गया है। आज कला बाजार का प्रभाव कला पर भारी पड़ने लगा है, जोकि चिन्ता का विषय है।

कलाकारों की यही 'प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ' वर्तमान में पारम्परिक लोक कलाओं में दिखायी देने लगी है। जिसमें कलाकार अपने विषय–वस्तु तो पारम्परिक कलाओं से चुन रहे है, किन्तु शैली, माध्यम, पद्धति, प्रविधि अपने स्वभाव के अनुकूल चुन रहें हैं। अगर इसे सकारात्मक रूप में लिया जायें तो, यह वह कारक है, जिसके फलस्वरूप आज भी पारम्परिक कलाऐं हमारें सामने हैं, जो शायद एक वक्त पर खत्म होने के कागार पर पहुँच गयी थीं। इसलिये यह कहा जा सकता है कि कलाकारों की प्रयोगवादी प्रवृत्तियों से कहीं ना कहीं हमारी प्राचीन परम्पराओं को नवजीवन मिलता है तथा सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में परम्परा तथा प्रयोग दोनों साथ–साथ चलते रहते हैं।

अतः प्रयोग के विषय में कहा जा सकता है कि सृजन और प्रयोग दोनो एक–दूसरे के पूरक हैं। सृजन प्रयोग पर आधारित है और प्रयोग सृजन पर। इसका भारतीय कला में विश्लेषण करने पर हम पायेंगे कि कला में 'प्रयोगवादी प्रवृत्ति' प्रत्येक काल की संस्कृति में उपस्थित रही है। हालांकि आधुनिक काल में कलाकारों ने कला में विविध प्रयोग करने के साथ–साथ कई नये माध्यमों को भी अपनाया। कहा जा सकता है कि भारतीय कला में ''प्रयोगवादिता'' आधुनिक काल की देन है। क्योंकि इसी समय कला अपनी परम्परावादी प्रवृत्ति को तोड़कर आधुनिक हुई और वह समकालीन सामाजिक घटनाओं को अपने आप में समाहित करते हुए वर्तमान में अपनी जगह बनायी है। चाहे मिथकीय चरित्रों के रूपाकंन से लेकर पुनरूत्थानवादी अवधारणाओं की अभिव्यक्ति का प्रश्न हो या फिर यर्थाथ को समाज तथा दर्शको के सामने प्रस्तुत करने का चाहे कलाकृतियों को प्रदर्शित करने के तरीको में बदलाव का। यह समय हमेशा ही प्रशंसनीय रहेगा। जिसके चर्चा के बिना भारतीय कला को समझना मुश्किल होगा।

संदर्भ

1. भारत की सामकालीन कला % एक परिप्रेक्ष्य, प्राणनाथ मागो, प्रकाशन–नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, दूसरी आवृत्ति 2016, पृष्ठ सं 105, 196
2. कला निबन्ध : कला में प्रयोगधर्मिता, गिर्राज किशोर अग्रवाल 'अशोक', संजय पब्लिकेशन्स, आगरा, तृतीय संस्करण 2012, पृष्ठ सं 229–231
3. .रूपंकर : समकालीन कला विमर्श, ज्योतिष जोशी, यश पब्लिकेशन्स, गाँधी नगर, दिल्ली, पृष्ठ सं 13–16
4. .शोध पत्र, रानी,समकालीन कला में प्रयोगधर्मिता–सकारात्मक या नकारात्मक, डॉ अर्चना, Raghunath Journal of Social Sciences & Humanities
5. समकालीन कला, समकालीन कला का आलोचनात्मक पक्ष, सृकृति मिश्र, ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक 48, फरवरी 2006, पृष्ठ सं 72–75
6. समकालीन कला, संतोष की कला : तंत्रकला की अविरल साधना, डॉ॰ अंजु चौधरी, ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक 48, फरवरी 2006, पृष्ठ सं 40–47
7. समकालीन कला, प्रयोगधर्मिता और साक्ष्य की आत्मा : परितोष सेन, विनय कुमार, ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, अंक 34, नवम्बर 2007–फरवरी 2008